E: ISSN NO.: 2349-980X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-9*(Part-1) May- 2019
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सफलता में आत्म–प्रत्यय और चिंता की भूमिका

कौशलेन्द्र तिवारी
शोधार्थी,
शिक्षक प्रशिक्षण विभाग,
डी.डब्ल्यू. टी.सी.,
कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

स्वीटी श्रीवास्तव
एसोसिएट प्रोफेसर,
शिक्षक प्रशिक्षण विभाग,
डी.डब्ल्यू. टी.सी.,
कानपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश

भारत जैसे विकासशील और बहुसंख्यक राष्ट्र में व्यावसायिक शिक्षा की प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए आजादी के बाद से ही भारत सरकार ने शिक्षा व्यवस्था को पुनर्संगठित और सुव्यवस्थित करते समय व्यावसायिक शिक्षा को विशेष महत्त्व दिया। इसके लिए भारत सरकार ने समय–समय पर विभिन्न आयोगों, समितियों और राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों के माध्यम से शिक्षा को व्यावसायिक दृष्टिकोण देने का प्रयास किया। इन प्रयासों के फलस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा और अंतर्निहित विभिन्न पाठ्यक्रमों में संख्यात्मक विस्तार व गुणात्मक सुधार हुआ है। साथ ही सरकार के द्वारा व्यावसायिक संस्थाओं को स्ववित्तपोषित मान्यता देने की अवधारणा ने व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण को तेजी से बढ़ने का अवसर प्रदान किया है। कानून, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, चिकित्सा और कम्प्यूटर विज्ञान के क्षेत्रों में निजी शिक्षण संस्थाओं की बाढ़ सी आ गयी है। दूसरी तरफ अभिभावकों में अपने बच्चों की क्षमताओं को न समझते हुए भी इन व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिलाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। ऐसी स्थिति में छात्रों के लिए उचित व्यवसाय का चयन और उसमें वांछित सफलता प्राप्त करना कठिन सा हो गया है। उचित व्यावसायिक पाठ्यक्रम के चयन और उसमें वांछित सफलता को पाने में आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे सम्प्रत्ययों की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। आत्म–प्रत्यय का बोध होने से विद्यार्थी अपने लक्ष्य का उचित निर्धारण कर सकते हैं। जबकि चिंता के सकारात्मक स्वरूप को जानकर विद्यार्थी अपनी समस्या का समाधान करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

मुख्य शब्द : व्यावसायिक, पाठ्यक्रम, आत्म–प्रत्यय, चिंता, दर्पण, प्रतिमा ।

प्रस्तावना

वर्तमान युग विज्ञान, तकनीकी तथा भौतिक विकास का युग है। इस युग में किसी भी राष्ट्र और उसकी जनता की सम्पन्नता, कल्याण और वैभवता उस देश की तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के विकास पर निर्भर करती है। वस्तुतः किसी राष्ट्र और उसकी जनता की समृद्धि का पैमाना तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा को माना जा सकता है। तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा की दृष्टि से विकसित राष्ट्रों के नागरिक सफलता और समृद्धि से परिपूर्ण निरापद जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जबकि तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े राष्ट्रों के नागरिक दीन–हीन ढ़ग से जीवन यापन कर रहे है। वास्तव में किसी राष्ट्र के भौतिक व मानवीय संसाधनों का उचित ढंग से उपयोग करके ही उस राष्ट्र को प्रगति के उच्च शिखर पर आसीन किया जा सकता है। स्पष्ट है कि किसी देश की संपन्नता उसके नागरिकों की तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा पर आधारित होती है। भारत जैसे विकासशील और बहुसंख्यक राष्ट्र के लिए तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा की महत्ता और अधिक प्रासंगिक व समीचीन हो जाती है। देश में गरीबी हटाने, पिछड़ेपन को दूर करने, जनसामान्य के जीवन स्तर को उन्नत करने, विदेशी ऋणों से मुक्ति पाने जैसे प्रयासों को सफल बनाने के लिए तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा के संख्यात्मक विस्तार और गुणात्मक सुधार की तीव्र आवश्यकता है।

हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था लॉर्ड मैकाले की शिक्षा व्यवस्था पर आधारित है। इसमें अन्य दोषों के अलावा एक दोष यह भी है कि यह शिक्षा को व्यवसायिक दृष्टिकोण देने में विफल रही है। देश के औद्योगीकरण से शिक्षा का कोई प्रत्यक्ष सम्बंध नहीं है। फलस्वरूप शिक्षा प्राप्त करने के बाद आज देश में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। वर्तमान परिदृश्य में युवा पीढ़ी के लिए शिक्षित होना जितना आवश्यक है, शिक्षित होकर अपने रोजगार की व्यवस्था करना उससे भी अधिक जरूरी हो गया है। भीड़ और प्रतियोगिता के

इस युग में रोजगार प्राप्त करना एक कठिन कार्य हो गया है। स्पष्ट है कि इन सभी समस्याओं का एक निदान तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा का विकास है। तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से जहाँ एक ओर देश के लोगों को संसाधन के रूप में परिणत कर बेरोजगारी की समस्या का समाधान करते हुए जीवन स्तर को उन्नत व समृद्ध बनाया जा सकता है, वही दूसरी ओर राष्ट्र के सामाजिक व आर्थिक लक्ष्यों को प्राप्त करके उसे विकसित व आधुनिक बनाया जा सकता है।

भारतीय पृष्ठभूमि में व्यावसायिक शिक्षा की प्रासंगिकता को दृष्टि में रखते हुए आजादी के बाद से ही भारत सरकार ने शिक्षा व्यवस्था को पुर्नसंगठित और सुव्यवस्थित करते समय व्यावसायिक शिक्षा को विशेष महत्त्व प्रदान किया। इसके लिए भारत ारकार ने समय–समय पर विभिन्न शिक्षा आयोगों (राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग), शिक्षा समितियों (आचार्य राममूर्ति समिति, जनार्दन रेड्डी समिति आदि) तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों(1968, 1986 व 2020) के माध्यम से शिक्षा को व्यावसायिक दृष्टिकोण देने का प्रयास किया। मानव संसाधन मंत्रालय की ओर से तैयार नई शिक्षा नीति 2020 के अंतिम मसौदे में कहा गया है कि शिक्षा के बाद विद्यार्थियों के लिए रोजगार के मौके बढ़ाने के लिए अगले छह वर्षों में स्कूलों एवं उच्च शिक्षा संस्थानों के 50 फीसदी छात्र– छात्राओं को विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों से जोड़ा जायेगा। इन प्रयासों के फलस्वरूप व्यावसायिक शिक्षा और अंतर्निहित विभिन्न पाठ्यक्रमों में संख्यात्मक विस्तार व गुणात्मक सुधार हुआ है।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों के आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे सम्प्रत्ययों का अध्ययन करना और विद्यार्थियों की सफलता में उनकी भूमिका का मूल्यांकन करना है।

आत्मबोध या आत्म–प्रत्यय (Self Concept)

आत्मबोध वह सामान्य प्रत्यय है, जिसका अर्थ है– व्यक्ति के गुणों और व्यवहारों के सम्बंध में उसका मत। एक व्यक्ति अपने गुणों और व्यवहार आदि के सम्बन्ध में जो मत रखता है वही उसका आत्मबोध या आत्म–प्रत्यय है। प्रत्येक व्यक्ति का आत्म–प्रत्यय उसके विचारों पर आधारित होता है तथा उस व्यक्ति के लिए यह आत्म–प्रत्यय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। आत्म–प्रत्यय व्यक्तित्व का केन्द्रबिन्दु है। आत्म–प्रत्यय का तात्पर्य प्रत्यक्षीकरण, विश्वास, सुख व अनुभव आादि है। व्यक्तित्व की तुलना साइकिल के पहिए से करें तो कहा जा सकता है कि साइकिल के पहिए मे लगा हुआ धुरा आत्म–प्रत्यय है तथा धुरा से जुड़ी हुई तीलियाँ व्यक्तित्व के विभिन्न लक्षण या शीलगुण हैं। कैटेल (1957) ने भी इस सम्बंध में विचार व्यक्त किया है –

"Self Concept is Keystone of Personality"

आइजेंक और उनके साथियों (1972) ने आत्म–प्रत्यय को परिभाषित करते हुए लिखा है कि व्यक्ति के व्यवहार, योग्यताओं और गुणों के सम्बंध में उसकी अभिवृत्ति, निर्णयों और मूल्यों के योग को ही आत्म–प्रत्यय कहते हैं।

आत्म–प्रत्यय की उत्पत्ति एवं विकास

सर्वप्रथम विलियम जेम्स (1899) ने कहा कि व्यक्तित्व प्रतिमान का केन्द्र बिन्दु आत्म (self) है। फ्रायड ने इसी आत्म को अहम् (Ego) कहा है जब कि सलवीन ने आत्म तंत्र कहा है। परन्तु, आत्मबोध शब्द का विस्तृत एंव व्यावहारिक प्रयोग कार्ल रोजर्स (1951) द्वारा किया गया। इसलिए कार्ल रोजर्स को आत्म–प्रत्यय का जनक माना जाता है।

आरम्भ से ही व्यक्ति मे आत्म की भावना होती है। परंतु, वह सुप्त अवस्था में होती है। जैसे–जैसे बालक का शारीरिक व मानसिक विकास होता है, उसके साथ ही उसके आत्म का भी विकास होता है। व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है। प्रत्येक अवस्था के अनुसार व्यक्ति का 'आत्म' विकसित होता है। जीवन के प्रथम वर्ष के अंत तक वह अपने आप को एक अलग प्राणी के रूप में समझने लगता है। वह अपनी आवाज से पहले अपनी माँ की आवाज पहचानता है। इसी प्रकार से वह शीशे में अपनी शक्ल से दूसरों की शक्ल पहचानना सीखता है। हरलॉक (1978) का भी यह विचार है कि–

'Because baby is primarily egocentric: he forms concept about himself before he forms concepts about other.'

बच्चों के आत्म–प्रत्यय में दो प्रकार की प्रतिमायें होती हैं। पहली आत्म प्रतिमायें शारीरिक आत्म प्रतिमायें हैं। इसका सम्बन्ध बालकों की शारीरिक बनावट और रंग–रूप से होता है। दूसरी आत्म प्रतिमायें मनोवैज्ञानिक आत्म प्रतिमायें होती हैं। इन आत्म प्रतिमाओं में बालकों की भावनायें, विचार, संवेग, साहस, ईमानदारी, स्वतंत्रता, योग्यतायें तथा आकांक्षायें आदि सम्मिलित होती हैं। बालक की आयु जैसे–जैसे बढ़ती जाती है वैसे–वैसे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक प्रतिमायें आपस में एक दूसरे से जुड जाती हैं।

फ्रैंक और फ्रैंक (1956) का विचार है कि बालक अपने चारों ओर के वातावरण में जैसा अपने आप को देखता है और जैसे उसके परिवार के लोग और परिचित उसे देखते हैं, इसी आधार पर वह अपने आत्म–प्रत्यय का निर्माण करता है। यही कारण है कि आत्म–प्रत्यय को दर्पण प्रतिमा कहा गया है। ऐसा ही विचार हरलॉक (1976) का भी है।

'The child's concept of himself as a person to a mirror image of what he believes significant people in his life think of him.'

एक बार आत्म–प्रत्यय बनने के बाद यद्यपि ये स्थिर होते हैं, परन्तु नये अनुभवों के बढने के साथ–साथ इनमें भी संशोधन और परिवर्द्धन होता रहता है। आत्म–प्रत्ययों में क्रमबद्धता पायी जाती है। व्यक्ति में प्रारम्भिक अवस्था में जो आत्म–प्रत्यय बनते है, उन्हें प्राथमिक आत्म–प्रत्यय कहा जाता है। ये माता–पिता या परिवार के सदस्यों के शिक्षण के आधार पर बनते है। इन प्राथमिक आत्म–प्रत्ययों में भी शारीरिक और

मनोवैज्ञानिक दोनो प्रकार की प्रतिमायें पायी जाती हैं। जब बालक दूसरे बच्चों के साथ खेलना प्रारम्भ करता है, स्कूल जाना शुरू करता है तब उसमें पहले से बने प्राथमिक प्रत्ययों का संशोधन और परिवर्द्धन होने लगता है। इस अवस्था के आत्म–प्रत्यय उद्दीपक द्वि आत्म–प्रत्यय कहे जाते हैं। इस प्रकार के आत्म–प्रत्यय बहुधा इस बात पर आधारित है कि दूसरे लोग बालक को किस प्रकार और किस दृष्टि से देखते हैं। बहुधा यह देखा गया है कि बालकों का प्राथमिक आत्म–प्रत्यय अधिक अनुकूल होता है तथा द्वितीयक आत्म–प्रत्यय उतना उनके अनुकूल नही होता है। अध्ययनों में देखा गया है कि समय–समय पर बालक अपने आत्म–प्रत्ययों में अपने सामाजिक और सांस्कृतिक समूहों के मूल्यों, नियमों और प्रतिमानों के अनुसार संशोधन करते रहते है।

लगभग तीन–चार वर्ष की अवस्था तक बालक सेक्स संबन्धी अन्तर समझने ही नहीं लगता है बल्कि वह बालों और कपड़ो के रख–रखाव के आधार पर लड़के लड़कियों और स्त्री और पुरूषों को अलग–अलग पहचानने भी लग जाता है। जब वह स्कूल जाना प्रारम्भ करता है, तो उसके यह अंतर और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। लगभग चार वर्ष का आलक अपने जातीय और प्रजातीय अंतरों को भी इसलिए पहचानने लग जाता है कि खेल के साथी और दूसरे लोग उससे उस की जाति और प्रजाति के अनुसार व्यवहार करने लग जाते है। जब वह विद्यालय जाने लग जाता है तब वह अपने परिवार की प्रतिष्ठा और अपने परिवार के सामाजिक और आर्थिक स्तर का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है। विद्यालय जाने तक वह यह समझने लगता है कि परिवार की ओर उसकी प्रतिष्ठा तथा सामाजिक, आर्थिक स्तर माता–पिता के व्यवसाय से निर्धारित होता है। वह इन अर्थों को अपने आत्म–प्रत्यय से जोड़ लेता हैं।

आत्म–प्रत्यय के घटक –

आत्म–प्रत्यय के तीन प्रमुख घटक हैं –

1. प्रत्यक्षात्मक घटक
2. प्रत्ययात्मक घटक
3. अभिवृत्तिपरक घटक

प्रत्यक्षात्मक घटक

इस घटक के अंतर्गत उसके शरीर की प्रतिमा आती है तथा वह दूसरों पर क्या छाप छोड़ता है। यह भी उसके प्रत्यक्षात्मक घटक के अंतर्गत आताहै। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति शारीरिक रूप से कितना आकर्षक है। इस घटक को शारीरिक आत्म–प्रत्यय भी कह सकते हैं।

प्रत्ययात्मक घटक

इस घटक के अंतर्गत उसकी वह विशेषतायें आती हैं, जिनके कारण वह दूसरों से भिन्न है। इसके अंतर्गत उसकी योग्यतायें और अयोग्यतायें भी आती हैं। इसके अंतर्गत जीवन के समायोजन से संबन्धित विशेषताएँ भी आती हैं, जैसे–ईमानदारी, आत्म–विश्वास, स्वतंत्रता, साहस अथवा इन गुणों के विपरीत गुण। इस घटक को मनोवैज्ञानिक आत्म–प्रत्यय भी कहते हैं।

अभिवृत्तिपरक घटक

इसके अंतर्गत व्यक्ति के स्वयं के प्रतिभाव आते है। इसके अंतर्गत यह अभिवृत्तियाँ भी आती हैं जो इसके आत्म–सम्मान, आत्मउपागम, गर्व आदि से संबन्धित होती हैं। इसके अंतर्गत उसके विश्वास, धारणायें और विभिन्न प्रकार के मूल्य, आदर्श और आकांक्षायें भी आती हैं।

आत्म–प्रत्यय के प्रकार

आत्म–प्रत्यय मुख्यतः दो प्रकार का हो सकता है–

1. वास्तविक आत्मप्रत्यय
2. आदर्श आत्मप्रत्यय

वास्तविक आत्मप्रत्यय

वह कौन और क्या है, से संबन्धित आत्म प्रत्यय ही वास्तविक आत्म प्रत्यय हैं।

आदर्श आत्म प्रत्यय

वह क्या बनना चाहेगा, से संबन्धित आत्म–प्रत्यय ही आदर्श आत्म–प्रत्यय हैं। उपर्युक्त दोनो प्रकार का आत्म–प्रत्यय भी प्रायः दो–दो प्रकार का हो सकता है–

1. शारीरिक आत्म–प्रत्यय
2. मनोवैज्ञानिक आत्म–प्रत्यय

कुछ अनुसंधान कर्त्ताओं ने निम्न दो प्रकार के आत्म–प्रत्यय बताये हैं–

1. गुणात्मक आत्म–प्रत्यय
2. वस्तुनिष्ठ आत्म–प्रत्यय

गुणात्मक आत्म–प्रत्यय

यह आत्म–प्रत्यय अस्थिर होता है। यह 'क्या मैं' अपने बारे में सोचता हूँ "कथन पर आधारित होता है।

वस्तुनिष्ठ आत्म–प्रत्यय

यह आत्म–प्रत्यय अपेक्षाकृत स्थिर होता हैं। 'क्या दूसरे मेरे बारे में सोचते है' कथन पर आधारित होता है। किसी भी प्रकार का आत्म–प्रत्यय इन दो प्रकारों में से किसी एक प्रकार का हो सकता हैं।

आत्म–प्रत्यय को प्रभावित करने वाले कारक

आत्म–प्रत्यय का विकास अनेक कारकों पर आधारित होता है।इन्हीं कारणों के प्रभावों के परिणाम स्वरूप व्यक्ति में आत्म–प्रत्यय का विकास होता है। कुछ महत्तपूर्ण कारक निम्नलिखित हैं–

1. परिपक्वता
2. बौद्धिक योग्यतायें (बुद्धि, तर्क, कल्पना, स्मृति, चिन्तन आदि)
3. सीखने के अवसर
4. बालक के परिवार का आर्थिक–सामाजिक स्तर
5. अनुभव (विशेष रूप से मूर्त अनुभव)
6. लिंग
7. सूचनाप्रतिपूर्ति
8. समायोजन
9. सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण

चिन्ता

चिंता संज्ञानात्मक शारीरिक, भावात्मक और व्यावहारिक विशेषता वाले घटकों की एक मनोवैज्ञानिक और शारीरिक दशा है । ये घटक अप्रिय भाव बनाने के लिए जुड़ते हैं जो कि आमतौर बैचैनी, आशंका, डर और क्लेश से सम्बंधित होते हैं। चिन्ता एक सामान्यकृत मनोदशा है जो कि प्रायः न पहचानने योग्य किसी उपन

द्वारा उत्पन्न हो सकती है। देखा जाय तो, यह भय से कुछ अलग है जो कि किसी ज्ञात खतरे के कारण उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त भय, भागने और परिहार, के विशिष्ट व्यवहारों से सम्बंधित है, जबकि चिंता अनुभव किये गये अनियंत्रित या अपरिहार्य खतरों का परिमाण है।

चिंता एक मानसिक स्थिति है, जो निरंतर चला करती है। सामान्यतयः मनुष्यों में कुछ सीमा तक चिंताएँ अवश्य रहती हैं, यदि मनुष्य में किसी बात की चिंता न रहे तो वह किसी कार्य के लिए अभिप्रेरित नही होगा।

फ्रायड ने चिंता को अचेतन मन के साथ जोड़ा है। उनके अनुसार दमित भावनायें ही रूपान्तरित होकर चिंता के अनेक रूप उत्पन्न करती है। फ्रायड के शब्दों में चिंता रूपान्तरित जीवन शक्ति है। लिण्डग्रेन ने चिंता शब्द की व्याख्या करते हुए कहा कि चिंता ऐसी जटिल तथा कभी–कभी दीर्घकालिक भावनात्मक स्थिति की और संकेत करती है। जो सामान्यतया भय, आंशका या तनाव से युक्त होती है। ऐसी स्थिति में यह हमारी आवश्यकताओं को प्राप्त करने में असफल होती है। हिल्गर्ड और एटकिंसन का चिंता से तात्पर्य ऐसे असुखदायी संवेग से है जिसकी क्लेश, शंका तथा भय द्वारा अभिव्यक्ति की जाती है। स्किनर के अनुसार चिंता मन की सह अशान्ति है जो किसी वर्तमान अथवा भविष्य में आने वाली कठिनाइयों से उत्पन्न होती है। चिंता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह भ्रामक, कष्टदायी तथा पहचानने में कठिन होती है। मनुष्य के जीवन में कुछ ऐसी आवश्यकतायें होती हैं जिन्हें वह दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं होने देना चाहता है। कभी–कभी व्यक्ति उन परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर चिंतित हो उठता जिनसे उसकी अपराधभावना जुड़ी रहती है। मारटिन के अनुसार चिन्ता केवल कुछ उत्तेजनाओं की दशाओं को चित्रित करती है, जो पृथक–पृथक हो सकती हैं। सामान्यतया दशाएँ सक्रियता से अत्यधिक तीव्र हो सकती है। कैटिल ने चिन्ता को मूलशक्ति के तनाव के प्रतिफल के रूप में माना है। उनके अनुसार व्यक्ति में सर्वप्रथम ऊर्जात्मक तनाव उत्पन्न होते हैं, तत्पश्चात् चिन्ता आती है।

एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार कहा जा सकता है कि चिन्ता एक भविष्य उन्मुख मनोदशा है, जिसमें एक व्यक्ति आगामी नकारात्मक घटनाओं का सामना करने का प्रयास करने के लिए इच्छुक या तैयार होता है। जो कि यह सुझाव देता है कि भविष्य बनाम उपस्थिति खतरों के बीच एक अन्तर है जो भय और चिन्ता को विभाजित करता है। चिन्ता को तनाव की एक सामान्य प्रतिक्रिया माना जाता है। यह किसी व्यक्ति की किसी मुश्किल स्थिति, काम पर या स्कूल में, से निपटनें में मद्द कर सकती है। अधिक चिन्ता करने पर, व्यक्ति दुश्चिंता विकार का शिकार हो सकता है। स्पष्ट से रूप से कहा जा सकता है कि चिन्ता की मात्रा किसी व्यक्ति के लिए उपयोगी और कार्यक्षमता बढ़ाने वाली होती है परन्तु यदि उसकी मात्रा अधिक बढ़ जाये तो मनुष्य के संतुलन को भंग करने वाली अनुपयोगी व्यवहार की जननी बन जाती है। चिन्ता उत्पन्न करने वाले कारणों के प्रति मनोवैज्ञानिकों में मतैक्य न हो, पर इतना निश्चित है कि सबकी मान्यता यह है कि चिन्ता का सम्बन्ध विचारों के अस्वीकृत हो जाने की आशंका, प्यार की कमी, अनुमोदन का अभाव एवं दण्ड प्राप्ति की आन्तरिक आशंका से होता है।

चिन्ता के सिद्धान्त

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा शिक्षाविदो ने अपनी–अपनी दृष्टि से चिन्ता के सिद्धान्तों का प्रतिपादन या समर्थन किया है जिसमें से प्रमुख सिद्धान्त अधोलिखित है –

व्यक्तिगत मनोविज्ञान का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक एडलर महोदय के अनुसार व्यक्ति के अन्दर मौलिक आवेग होता है तथा वह श्रेष्ठता के लिए संघर्ष करता है। जब वह आवेग निष्फल हो जाता है तब व्यक्ति हीनता महसूस करता है और व्यक्ति चिंतित रहने लगता है।

1- विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान का सिद्धांत

युंग के अनुसार चिन्ता चेतन मस्तिष्क की विवके रहित सामर्थ्यों द्वारा व्यक्तिगत आक्रमण की प्रतिक्रिया है और अचेतन संचय चिन्ता का रूप धारण कर लेता है।

नोविश्लेषणात्मक सिद्धांत

फ्रायड के अनुसार प्राणियों में चिन्ता स्वाभाविक है। व्यक्ति अपनी रक्षा के लिए प्रयत्नशील रहता है। चिन्ता उसके सह ज्ञान का अंश है। चिन्ता किसी व्यक्ति को भय की उपस्थिति से सावधान करती है।

अर्न्तवैयक्तिक सिद्धान्त

सुलीवान ने अर्न्तवैयक्तिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। चिन्ता व्यक्ति के अर्न्तवैयक्तिक सम्बंध में तनाव उत्पन्न होने पर व्यवहार में असमता की दशा है इन्होने शांत एवं तीव्र चिन्ता की अवस्था का वर्णन किया है।

मौलिक चिन्ता का सिद्धान्त

हार्नी के अनुसार चिन्ता भावना से सम्बंधित होती है। जब किसी व्यक्ति में कोई भावना जागृत होती है, तो उसे चिन्ता होती है। यह एक तनाव की दशा है तथा बाह्य कारणों द्वारा उत्पन्न भाव है।

पृथक्कीकरण का सिद्धान्त

रैन्क के अनुसार व्यक्ति में पृथक्कीकरण की अवस्था जन्म से होती है। यह स्थिति जीवनपर्यन्त बनी रहती है, यहाँ तक कि मृत्यु तक।

सांस्कृतिक सिद्धान्त

फ्रोम के अनुसार चिन्ता संस्कृति के मूल में विद्यमान रहती है। सांस्कृतिक क्रिया कलापों, रीति–रिवाजों तथा व्यवहारों में यह पूर्णतया देखी जाती है।

अहम् मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त :–

जैकोबसन ने स्पष्ट किया है कि चिन्ता व्यक्ति की आत्मपर अभिव्यक्तियों से पुष्ट होती है।

उत्तेजना का सिद्धान्त :–

डफाई ने उत्तेजना स्थिति के साथ व्यवहार का प्रभाव देखा।

व्यक्ति का आयामी सिद्धान्त :–

आइजेंक ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि चिन्ता भय की दशा है। जब भय एव निराशा की स्थिति आती है तो व्यक्ति में चिन्ता देखी जाती है।

चालक (अन्तर्नोद) सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार चिन्ता के पीछे एक चालक (अन्तर्नोद) होता है। चालक ही चिन्ता को जन्म देता है।

चिन्ता अधिपत्य सिद्धान्त

इप्स्टीन ने अपने अध्ययन में पाया कि व्यक्ति के गंभीर एवं वशिष्ट व्यवहारों में चिंता की दशा देखी जाती है।

दार्शनिक चिन्ता का सिद्धान्त

हार्नी के अनुसार व्यक्ति के अनुसार व्यक्ति स्वयं विचारवान, तुच्छ एवं चितिंत बनता है। व्यक्ति के विचार के फलस्वरूप चिंता का स्वरूप दिखाई देता है।

अस्तित्वात्मक चिन्ता का सिद्धान्त

फिशर के अनुसार 'स्वतंत्रता की सम्भावना' चिन्ता का कारण होता है, इसके लिए व्यक्ति भयभीत रहता है, परिणामतः चिन्तित रहता है।

चिन्ता के प्रकार

फ्रायड के अनुसार चिन्ता तीन प्रकार की होती है–

वस्तुनिष्ठ चिन्ता

यह वास्तविक या सत्य चिन्ता कहलाती है जिसका मुख्य स्त्रोत बाह्म कारक है।

मनस्ताप चिन्ता

यह आघात भय के संबंध में उत्पन्न होती है।

नैतिक चिन्ता

जब भय का प्रत्यक्षीकरण अन्तःकरण से होता है तब नैतिक चिन्ता उत्पन्न होती है। जीवन में अनेक ऐसी स्थितियाँ होती है जो चिन्ता को समृद्ध तथा धनीभूत बनाती हैं। सामान्य चिन्ता व्यक्ति को किसी कार्य के सम्पादन के लिए प्रेरित करती है। जिससे वह अपने जीवन मे सुख शान्ति का अनुभव कर सके। चिन्ता का उच्च स्तर व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करता है। सामान्य चिन्ता सामाजिक कुशलता की उपलब्धि को उन्नत बनाने तथा अर्न्तव्यैक्तिक संबन्धों को सुधारने में सहायक होती है। चिन्ता से वातावरण प्रभावित होता हैं चिन्ता से व्यक्ति और समाज प्रभावित होता है। व्यक्ति की चिन्ता की अनिवार्यता होती है। बिना चिन्ता के किसी कार्य को सम्पन्न किया जाना सम्भव नहीं होता है। व्यक्ति किसी भी कार्य को करने से पूर्व उस पर विचार करता है, यह उसका विचार ही चिन्ता है। चिन्ता विद्यालय के परिप्रेक्ष्य में उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि व्यक्ति विशेष के स्वयं के लिए होती है।

औचित्य तथा महत्त्व

किसी भी राष्ट्र का भविष्य उसके विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र होते है। विद्यालयी शिक्षा छात्रों का सर्वांगीण विकास करके उन्हें श्रेष्ठ मानव बनाने का प्रयास करती है। परन्तु, जिस प्रकार हमारा जीवन विभिन्न कठिनाइयों और समस्याओं से युक्त है, उसी प्रकार शिक्षा प्रक्रिया भी कठिनाइयों और समस्याओं से मुक्त नहीं है। फिर वह चाहे किसी भी स्तर पर दी जानें वाली अकादमिक शिक्षा हो या व्यावसायिक शिक्षा, प्रत्येक स्तर पर भिन्न –भिन्न प्रकार की समस्यायें छात्रों के सम्मुख आती है और इन समस्याओं का स्तर अलग–अलग होता है। ये समस्यायें कई प्रकार की हो सकती हैं जैसे शारीरिक, आर्थिक, मानसिक आदि। शारीरिक और आर्थिक समस्याओं का निदान तो बहुधा डॉक्टर और माता– पिता द्वारा कर दिया जाता है। परन्तु, मानसिक स्तर पर उत्पन्न समस्यायें कई बार विकराल रूप धारण कर लेती हैं। चूँकि ये समस्यायें दृष्टिगोचर नहीं होती है, इसलिए इनके बारे में दूसरा व्यक्ति अनभिज्ञ होता है। विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित समस्यायें यथा उनकी चिन्ता व कुण्ठा का उनके शैक्षिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बंधित समस्यायें निरंतर बढ़ती जाती हैं।

आज युवा वर्ग की महत्वाकांक्षायें बढ़ती जा रही है। खासकर महानगरों एवं शहरों में जागरूक युवा सोच समझकर अपने व्यवसाय का चुनाव करते हैं। उभरते हुए युवाओं के चुनौतीपूर्ण उज्जवल भविष्य के लिए कई सुनहरे व्यवसाय उपलब्ध हैं, जैसेकि कम्प्यूटर विज्ञान, अभियांत्रिकी, चिकित्सा, कानून, प्रबंधन, अध्यापक शिक्षा इत्यादि। बालक उपरोक्त में से किसी भी व्यवसाय को चुनकर अपना भविष्य सुधार सकता है और अपने जीवन में सफल हो सकता है।

वर्तमान में सरकार के द्वारा व्यावसायिक संस्थाओं को स्ववित्तपोषित मान्यता देने की अवधारणा ने व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण को तेजी से बढ़ने का अवसर प्रदान किया है। कानून, प्रौद्योगिकी, प्रबंधन, चिकित्सा और अध्यापक शिक्षा के क्षेत्रों में निजी शिक्षा संस्थाओं की बाढ़ सी आ गयी है। दूसरी तरफ अभिभावकों में अपने बच्चों की क्षमताओं को न समझते हुए भी इन व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिलाने की प्रवृत्ति बढ़ी है। ऐसी स्थिति में छात्रों के लिए उचित व्यवसाय का चयन और उसमें वांछित सफलता प्राप्त करना कठिन सा हो गया है।

उचित व्यावसायिक पाठ्यक्रम के चयन और उसमें वांछित सफलता पाने में आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे सम्प्रत्ययों की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। आत्म प्रत्यय व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। उचित समायोजन और सफलता के लिए आत्म–प्रत्यय को जानना अत्यंत आवश्यक है। आत्म–प्रत्यय का बोध होने से विद्यार्थी अपने लक्ष्यों का उचित निर्धारण कर सकते है और अपनी चिंताओं का समाधान कर सकते है। शोधार्थी ने यह भी महसूस किया कि सफलता के लिए चिंता के सकारात्मक स्वरूप को समझना आवश्यक है।जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों में अधिक चिंतित हो जाते हैं। वे कुशाग्र होने के बाबजूद परीक्षा में अच्छे अंक नहीं प्राप्त कर पाते हैं। इसके विपरीत जिन विद्यार्थियों में परीक्षा के लिए बिल्कुल चिंता नहीं होती है, वे भी अच्छे अंक नहीं ला पाते है। शोधार्थी स्वयं अध्यापक शिक्षा से सम्बधित है। उसे भी व्यवसाय के चयन में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। अतः उपरोक्त तथ्यों और पूर्व के अनुभवों को

ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने अपने शोधकार्य के अंतर्गत "विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत् विद्यार्थीयों के आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे समप्रत्ययों के अध्ययन पर बल दिया है। प्रस्तुत अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से उपयोगी हो सकता है–

व्यक्तिगत स्तर पर

आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे सम्प्रत्ययों के अध्ययन से विद्यार्थियों को व्यक्तिगत स्तर पर नई दिशा प्रदान कर सकते है। वे अपने–अपने व्यवसाय के चयन और उनमें वांछित सफलता के लिए इन निष्कर्षों से लाभ उठा सकते है। स्वयं शोधार्थी के लिए ये परिणाम बहुत उपयोगी हो सकते हैं क्योंकि वह भी एक प्रमुख व्यवसाय अर्थात् अध्यापक शिक्षा से सम्बन्धित है।

समाज एवं राष्ट्र के लिए

यदि समाज में प्रत्येक व्यक्ति सुशिक्षित तथा रोजगारयुक्त होगा तो निश्चित ही एक सुसमायोजित, सभ्य, सुसंस्कृत और पढ़े–लिखे समाज का निर्माण होगा।

आज के कम्प्यूटरीकृत, औद्योगिक और तकनीकी युग में राष्ट्र की मांग है कि अधिकांश नागरिक तार्किक, सुनियोजित, सतर्क, एकाग्र, चिंतनशील तथा उच्च ग्राह्य क्षमता वाले तथा उच्च वैचारिक स्तर वाले हों। अधिकतर व्यवसायी ओर उद्यमी अपने व्यवसाय मे उच्च और दक्ष कौशल वाले व्यक्ति को प्राथमिकता देते है। अतः यदि हम अपने विद्यार्थियों को राष्ट्र और समाज की मांग के अनुरूप तैयार करते हैं तो आवश्यक है कि हम यह जानें कि कौशल विकास पर अन्य कारको के साथ–साथ आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे कारक प्रभाव डालते हैं। तभी हम बड़ी संख्या में योग्य इंजीनियर, कम्प्यूटर विशेषज्ञ, कानूनविद, प्रबंधक अथवा चिकित्सक तैयार कर पायेंगें जो उच्च स्तरीय अनुसंधान करके तथा नई तकनीक विकसित करके विश्व में एक राष्ट्र का नाम ऊँचा कर सकते है।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि विभिन्न व्यावसायिक पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत विद्यार्थियों की अपेक्षित सफलता में आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे सम्प्रत्ययों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आत्म–प्रत्यय व्यक्तित्व को प्रभावित करता है तथा उचित समायोजन व अपेक्षित सफलता में सहायक होता है। आत्म–प्रत्यय का बोध होने से विद्यार्थी अपने लक्ष्यों का उचित निर्धारण कर सकते हैं और अपनी चिंताओं का समाधान कर सकते हैं। इसी प्रकार चिंता के सकारात्मक रूप को जानना भी अपेक्षित सफलता के लिए आवश्यक है। चिंता की अत्यधिक मात्रा और बहुत कम मात्रा दोनों ही विद्यार्थियों की सफलता पर नकारात्मक प्रभाव डालती हैं। चिंता व्यक्ति को कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करती है। यह किसी मुश्किल स्थिति से निपटने में व्यक्ति की मद्द करती है। इस प्रकार विद्यार्थियों की वांछित सफलता में आत्म–प्रत्यय और चिंता जैसे सम्प्रत्ययों का योगदान स्पष्ट है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

गुप्ता, ए० & गुप्ता, एस० पी०(2015); भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्यायें, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, पृष्ठ,427–437।

गुप्ता, ए० & गुप्ता, एस० पी०(2017); उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, पृष्ठ, 308–48, 589–90।

लाल, आर० बी० (2012–13); भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशंस, पृष्ठ, 470–73, 536।

सिंह, ए० के० (2016); शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन, पृष्ठ, 466–505।

शर्मा, एस० के० (2018); भारत में शिक्षा के व्यावसायीकरण का विश्लेषण, गोण्डा, शोध नवनीत छमाही, अंक–x, पृष्ठ, 350–55।

आत्म एवं व्यक्तिव, Retrived from https//www.ncert.nic.in

आत्म–सम्प्रत्यय, Retrived from https//unacademy.com

चिंता, Retrived from https//hi.m.wikipedia.org